International Journal of Jyotish Research: 2017; 2(2): 28-30

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2017; 2(2): 28-30
© 2017 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 15-02-2018
Accepted: 16-03-2018

डॉ. ओमप्रकाश पारीक
सहआचार्य स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, राज.बा. नारायण दास महाविद्यालय, चिमनपुरा (शाहपुरा), जयपुर

Correspondence
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
सहआचार्य स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, राज.बा. नारायण दास महाविद्यालय, चिमनपुरा (शाहपुरा), जयपुर

वैदिक साहित्य के आर्थिक विचारों की उपादेयता

डॉ. ओमप्रकाश पारीक

प्रस्तावना

अर्थ की परिगणना भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ–चतुष्ट्य में की जाती है, अतः मानव जाति का इतिहास जितना प्राचीन हो सकता है, उसके साथ उसका आर्थिक इतिहास भी जुड़ा हुआ है। वेद विश्व साहित्य के सबसे पुराने ग्रन्थ हैं। वेदों में इहलौकिक और विशेष रूप से पारलौकिक विषयों पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। तत्त्व दृष्टा ऋषियों द्वारा मानवों के लिये जो अभिप्रेत कल्याणकारी उपदेश हैं, उनमें सुखप्रद जीवन एवं आत्मिक कल्याण की भावना भरी है। वैदिक परम पुरुष तथा अन्य आराध्य देवों की उपासना विभिन्न दृष्टिकोणों से की गई है जिसमें अर्थ और सुख प्राप्त करना भी है। यथा–

अस्य स्तुषे महिमद्यस्य राधः सचा सनेम नहुष सुवीराः।
जनो यः पज्रेम्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः।।

अर्थात् मैं धन वाले देवों के धन की स्तुति करता हूं, हम मनुष्य हैं इसलिये रण में शोभा पाने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर इस धन का उपभोग करें। जो देव अंगिरा गोत्री कक्षीवान को अन्न, घोड़े और रथ देते हैं, उन्हीं की मैं स्तुति करता हूं।

वैदिक आर्यों को अर्थ एवं सुख की जितनी कामना थी, उसी प्रकार वे अर्थव्यवस्था के संचालन तथा आर्थिक व्यवहार के नियमों से अनभिज्ञ नहीं थे। मानव व्यवहार के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में जो वैदिक ज्ञान है, उसमें आर्थिक नियमों की झांकी भी मिलती है। वैदिक काल की आर्थिक विचारधारा को नैतिक एवं आध्यात्मिकता से भिन्न नहीं किया जा सकता। इस विचारधारा में व्यक्ति की अपेक्षा समाज और व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सार्वजनिक कल्याण पर बल दिया गया है। नैतिक नियमों द्वारा व्यक्ति के ऐसे व्यवहार को नियंत्रित करने की चेष्टा की गई है जो सामाजिक हितों के विरूद्ध हो। इसलिये वैदिक काल में अर्थशुचिता भी दृष्टिगत होती है।

वैदिक काल में पशु, भूमि, स्वर्ण, दास सम्पत्ति के विविध प्रकार थे। आर्य जीवन कृषि प्रधान था, पशुपालन भी उसी पर आधारित था। लोग गाय–बैल, अश्व, भेड़, बकरी, कुत्ते, गधे पालते थे और हलों से जुताई कर जौ, गेहूं, तिल आदि अन्न उपजाते थे। वामदेव ऋषि ने बैलों व नरों क सुखी होने और सुखपूर्वक कृषि करने की कामना की है –'

शुनं वाहाः शुनं भरः शुनं कृषतु लांगलः।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिंगय।। –ऋग्वेद 4/57/4

सीता लांगलपद्धति की भी वन्दना की गई है जिसमें कृषि महत्ता के सम्बन्ध में ऋग्वैदिक विचारों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

अर्वाची सुभगे नव सीते वन्दामहे ता
यथा न सुभगाससि यथा न सुफलासि।
इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूसा नु यच्छतु
या न यमस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समा।।
–ऋग्वेद 4/57/9

वैदिक अर्थव्यवस्था सामान्य आर्थिक नियमों पर आधारित थी। डॉ. जे.एस. ब्राडन के अनुसार, ''अर्थव्यवस्था वह प्रणाली है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आजीविका कमाते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि करते हैं, इसलिये अपनी आजीविका तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु वैदिक आर्यजन आर्थिक नियमों से प्रेरित दिखाई देते हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के पांच साधन हो सकते हैं जो वैदिक अर्थव्यवस्था में भी दिखाई देते हैं।
(1) भूमि को लगान
(2) साहस को लाभ
(3) श्रम को मजदूरी
(4) संगठन को भागीदारी
(5) पूंजी को ब्याज

वैदिक सभ्यता में भूमि अर्थ का प्रमुख साधन था। आर्यों की खेती को उनके आर्थिक जीवन का आधार मानते हैं वे पृथ्वी को माता के रूप में देखते हैं, अथर्ववेद में पृथ्वी सूक्त में कहा है पृथ्वी मेरी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूं –

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''
(अथर्ववेद 12/1/12)

आर्यजनों के कृषि, पशुपालन और उद्योगों का कुटीर आधार पर संचालन होता था। भूमि को ऐश्वर्यप्रदायिनी शक्ति और उत्पादन के साधन के रूप में देखा जाता था। अथर्ववेद में ही भूमिसूक्त में कहा गया है ''जिस मातृभूमि उद्यमशील तथा शिल्प चातुरी में निपुण निजी परिश्रम से खेती करने वाले हुये हैं, जिस भूमि में चार दिशायें और चार विदिशायें चावल, गेहूँ आदि उपजाते हैं, जो अनेक प्रकार से प्राण धारण करने वाले चलने फिरने वालों का धारण–पोषण करती है, वह हमारी मातृभूमि हम सबों का गोपें और अन्नादि प्रदान कर भरण–पोषण करे–

यस्याश्चतस्र प्रदिशः पृथिव्या यस्मान्नं कृष्ट्य संबभूवूः।
या विभर्ति प्राणदेजत्सा नो भूमि गोवक्ष्यशे दधातु।।
(अथर्ववेद 12/1/4)

यहां भूमि की उपासना उसकी उपयोगिता के आधार पर की गई है।
वैदिक साहित्य में श्रम नामक उत्पादन के साधन को समुचित महत्व प्राप्त है। मनुष्य उद्योग करे, परिश्रम करे, अकर्मण्य न रहे तभी समृद्ध हो सकता है, जागते रहना उद्यम एवं पुरूषार्थ समृद्धि का लक्षण है –

''भूत्यै जागरंण अभूत्यै स्वपनं।''
(यजु. 30/17)

हे देव हमें व्यर्थ की वार्ता आलस्य एवं निद्रा से बचाओ

''त्रतारो देवा अधिवोचता नो मानो निद्रा ईशत मोत जाल्पे''
(ऋग्वेद 8/48/14)

ईश्वर उनकी सहायता करता है जो आलस्य का त्याग करते हैं –

''इच्छति देवा सुन्वन्तं न रचप्राय स्पृहयति''
(ऋग्वेद 8/2/18)

ईश्वर उनका मित्र है जो श्रम करते हैं –

''न कृते श्रान्तस्य सख्याय देवाः''
(ऋग्वेद 4/33/11)

वैदिक युग में सेवक परिवार का ही सदस्य माना जाता था, उसे गृहपति से पहले भोजन देने का विधान था –

''स्वेसु भृत्येसु चैवाहि।''
मनुष्य द्वारा निर्मित उत्पादन के साधनों को अर्थशास्त्र की परिभाषा में पूंजी कहते हैं, वैदिक काल में पूंजी के रूप में उत्पादन के साधन का प्रयोग नगण्य रूप से ही प्राप्त होता है।
संगठन नामक उत्पादन के साधन में वेदों में मिल जुलकर सहकार के आधार पर कार्य करने की विधि को अत्युत्तम माना है। अथर्ववेद में संगठनात्मक समितियों में मेल–जोल के आधार पर कार्य करने को सफलता का सूत्र बतलाया गया है –

ज्यायश्वन्ताश्चित्ति नो–मा वि यौष्ट संराधयन्त सधुराश्चरन्तः।
न्यन्योन्यस्मै वल्गवदन्तोयात समागास्थ सधीचीनान।।
– (अथर्ववेद 5/19/5)

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी बताया गया है मिलकर काम करने से, मिलकर खाने से तेज और समृद्धि की प्राप्ति होती है –

'सह नावतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवा वहै''
(ऋग्वेद 10/191/12)

एक साथ धन लगाकर एक साथ श्रम कर जो कुछ भी लाभ हो, उसका सभी में समान भाव से वितरण हो, अन्न व जल का समान भाग से वितरण हो, सभी लोग एक ही बन्धन नियमों में बंधकर कार्य करें –

समानी प्रपा सहवो अन्नभागः समानेमोषधे सहवोयुनज्मि सभ्यजोग्निं सपर्यतारां नाभिमवाकृता।।

– (अथर्ववेद 5/19/6)

वैदिक ऋषियों के विचारों में सहकारी संगठन ही उत्पादन का सर्वोत्तम रूप रहा है। साहस या उद्यमी को लाभ मिलता है जो कि वेदों में सम्मिलित भावना पर ही आधारित है।

वैदिक आर्य अपनी अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार के शिल्पों का अनुसरण करते थे। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा है मैं कारू (शिल्पी) हूं, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माता उपले थापती है। हम सबकी बुद्धि विभिन्न प्रकार की है। वेदों में धातु शिल्प का भी प्रयोग होने लगा था। लुहार के लिये ऋग्वेद में ''कर्मार'' शब्द का प्रयोग हुआ है। बृहस्पति की उपमा कर्मार से दी गई है जो धोंकनी से आग उदीप्त करता है –

''बृहस्पतिरेता सं कर्मार इवाधनत्''

– (ऋग्वेद 10/72/2)

तक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य रथ और अन्य वाहन बनाना था –

''खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो''

– (ऋग्वेद 8/91/7)

इसी प्रकार चटाई बुनना और इसके लिये स्त्रियां नड़ (नरकट) को पत्थर से कूटकर चटाइयां बनाती थी –

''यथा नदं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यशमना।''

– (ऋग्वेद 6/138/5)

चमड़े के उद्योग में जूते बनाने हेतु वराह (सूअर) के चमड़े को प्रयुक्त किया जाता था।

''अथ वाराह्याऽऽपामहाऽऽउपनाहाऽ उपमुच्यते।''

– (शपतथ 5/4/3/19)

वैदिक आर्यों का अधिकांश व्यापार वस्तु विनिमय के द्वारा ही होता था। यदि मूल्य के मापदण्ड में किसी वस्तु का प्रयोग होता था तो वह थे पशु और उसमें गाय। वैदिक युग में सिक्कों का भी प्रयोग किया जाने लगा था। वेदों में बहुत सी जगह ''निष्क'' शब्द का उल्लेख है। एक मंत्र में कहा गया है कि ऋषि कक्षीवान ने सवान के राजा तूर्त से सौ निष्क और सौ घोड़े दान में प्राप्त किये –

''यो मे सहस्रमिमीत सवानतूर्तो राजाश्रव इच्छमान्।
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्का×छलमश्वान प्रयतान् सद्य आदम्।।''

– (ऋग्वेद 1/126/1)

वेदों में रथो, मार्ग, समुद्र, स्थल, नौका इत्यादि की चर्चा है जिससे यह बात सामने आती है कि उस समय जल और थल मार्ग से व्यापार भी होता था। अर्थव्यवस्था में व्यापारियों का बड़ा महत्व है, इस विषय में ''पणियों'' की चर्चा है, यास्क ने प्रतिपादित किया है कि पणि वणिक होता है –

''पणिर्वणिक भवति''

– (निरूक्त 2/17)

इससे यह ज्ञात होता है कि पणि एक जाति थी जो वैश्यावृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करती थी।

इस प्रकार वेदों में हमें जो अर्थव्यवस्था दृष्टिगत होती है, वह असीमित साधनों के सीमित उपयोग के लिये अधिकाधिक सर्वजन कल्याण पर आधारित है। वेदों में अनैतिक रूप से अर्थोपार्जन का निषेध है। ऋग्वेद में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि द्यूत क्रीड़ा आदि अनैतिक कार्यों से धन प्राप्ति की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। ऐसे लोगों को खेत में जाकर कृषि करने, पशुपालन करने और गृहस्थी चलाने के लिये कहा है –

अक्षैर्मादीव्यः कृषिम् इति कृषस्व
वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे विचष्टे सवितायामर्थः।।

– (ऋग्वेद 10/34/13)

यजुर्वेद में कहा है कि जिन लोगों ने अपने धन को निर्धन जीवों में वितरण किया, वे पुण्य और यश के प्रभाव से सदैव जीवित हैं। इस प्रकार वैदिक अर्थव्यवस्था सार्वभौमिक एवं मौलिक आवश्यकताओं पर आधारित थी। नैतिक आर्थिक नियम व्यक्ति के लिए सार्वजनिक रूप से विरूद्ध आचरण को रोकने में सक्षम थे। वैदिक कालीन श्रम की महत्ता से उस समय की वैयक्तिक आत्मनिर्भरता का ज्ञान होता है, जहां आर्थिक भ्रष्टाचार के लिये कोई स्थान नहीं था।

वैदिक अर्थव्यवस्था के विचार आज के खोखली अर्थव्यवस्था जहां आर्थिक विषमता, निर्धनता, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, आर्थिक भ्रष्टाचार, आर्थिक मंदी, बेरोजगारी आदि समस्यायें विकट रूप से दिखाई देती हैं, उन समस्याओं के निराकरण में प्रासंगिक सिद्ध हो सकते हैं। वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था में प्रयुक्त अर्थशुचिता की भावना एवं बांटकर खाने की भावना आज के भ्रष्टाचार को समाप्त करने में प्रासंगिक सिद्ध होती है।